Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 4, March-2019, ISSN 2230-7540

अमरकान्त की औपन्यासिक रचना 'कटीली राह के फूल' में शिक्षाधाम प्रबन्धन की विसंगतियों का सूक्ष्म अध्ययन

Sunita Devi*

Lecturer of Hindi, G. S. S. S. Gudha, Mohindergarh

सार - ***समाज में कुछ मानक निर्धारित होते हैं। व्यक्ति को उन्हीं के अनुरूप अपना व्यवहार निर्धारित करना पड़ता है। परन्तु उसका व्यवहार सदैव उन निर्धारित मानकों के अनुरूप ही हो, यह आवश्यक नहीं। सामाजिक संरचना के स्वरूप एवं प्रकृति का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व और कार्यों पर पड़ता ही है। यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। क्योंकि व्यक्ति इस सामाजिक संरचना का अंग होता है। यह प्रभाव दोनों प्रकार का हो सकता है- अच्छा भी और बुरा भी। इसी कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व एवं व्यवहार समाज के अनुकूल भी हो सकता है और प्रतिकूल भी। इसी प्रतिकूल या अस्वाभाविक अवस्था को समाज में 'विसंगति' कहा जाता है।***

----------X----------

'विसंगति' का शाब्दिक अर्थ वि+संगति = 'संगति का अभाव' है।[1] इसे अंग्रेजी में 'Anomie' कहते हैं।[2] समाज एक-दूसरे की संगति से ही बना है। जब भी संगति का अभाव पाया जाता है तो समाज में विकृतियां, विघटन, स्वार्थ, करीतियां, असहयोग आदि की भावना पनपने लगती हैं।

आधुनिक समाज शास्त्री सिद्धान्त के क्षेत्र में विसंगति की अवधारणा को सर्वप्रथम विकसित करने का वास्तविक श्रेय इमाइल दूर्खीम को है। दुर्खीम ने अपने सिद्धान्त में विसंगति को मानक शून्य की संबा दी है।

दुर्खीम के अनुसार- "जब सहसा परिवर्तन होता है तो समाज के नियामक नियमों की आदर्शात्मक संरचना में शिथिलता आ जाती है, अतएव व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं होता कि क्या उचित है अथवा अनुचित, उसके संवेग अत्याधिक होते हैं, जिनकी संतुष्टि हेतु वह विसंगति करता है।"[3]

सदरलैण्ड एवं क्रोसे ने भी ऐसी परिभाषा विसंगति की दी है- "विसंगति एक ऐसी अवस्था या दशा है जिसमें व्यक्ति यह नहीं जानता कि उसे कैसा व्यवहार करना है, क्योंकि उसे यह नहीं मालूम कि उससे क्या आशा की जाती है।"[4]

उपरोक्त परिभाषाओं से विसंगति का अर्थ और समाज में इसका स्थान पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। यह एक आदर्श-नियमहीनता की अवस्था या स्थिति है। इसे आदर्श-नियमहीनता इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि आधुनिक समाज में नियमों को आदर्श तो नहीं कहा जा सकता अपितु, उनमें आदर्श-नियमों के अनेक पुंज होते हैं, जिनमें से कोई भी व्यक्ति निश्चित एवं स्पष्ट मार्गदर्शन पाने में असमर्थ होता है। वास्तव में आधुनिक शिक्षा जगत अनेक विसंगतियों से युक्त हैं। इनमें आपसी तालमेल का सदा अभाव पाया जाता है। समाज व शिक्षा जगत में फैली इस विसंगति के कारण विद्यार्थी समझ नहीं पाता कि किस का अनुसरण करना उसके लिए लाभकारी होगा। छात्र पारिवारिक नियमों का पालन करे या विद्यालयी नियमों का? ऐसी अवस्था में आदर्श-नियमों, द्वन्द्व, भ्रान्ति के कारण विसंगति उत्पन्न होती हैं।

वास्तव में शिक्षा के क्षेत्र में तीन आयाम हैं:- (क) विद्यार्थी वर्ग, (ख) शिक्षक वर्ग, (ग) शिक्षाधाम अर्थात विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय। इन चारों आयामों में पूर्णतः होने से शिक्षा का स्वच्छ वातावरण तैयार होता है। अमरकांत के उपन्यास 'कटीली राह के फूल' में शिक्षा जगत के इन चार आयामों का मूल्यांकन करने से पूर्व आधुनिक युग की शिक्षा सम्बन्धी स्थितियों का अवलोकन करना उचित जान पड़ता है।

[1] कलिका प्रसाद (वृहद हिन्दी कोश), पृ. 20
[2] वही।
[3] विद्याभूषण और डी.आर. सचदेवा, समाजशास्त्र के सिद्धान्त, पृ. 779
[4] डॉ. एम.एम. लवानिया और शशि के.जैन, सैद्धान्तिक समाजशास्त्र, पृ. 181

www.ignited.in

(क) विद्यार्थी वर्ग:

संघर्षशीलता का अभाव:

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का सशक्त साधन है। यह सामाजिक परिवर्तन का आधार भी तैयार करती है। शिक्षा को जितना बढ़ावा दिया जाएगा, उतना ही सामाजिक परिवर्तन सुगम होगा। आधुनिक विद्यार्थी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का है। उसका ध्यान शिक्षा की बजाय अन्य दुष्प्रवृत्तियों की ओर अधिक है। महाविद्यालयों में विद्यार्थी वर्ग की अनुपस्थिति रहती है, जिससे वे अन्य मेधावी छात्रों से परीक्षा में पिछड़ जाते हैं। आनन-फानन में बटोरी गई सहायक सामग्री अर्थात् रट्टा प्रवृत्ति से परीक्षा उतीर्ण करना चाहते हैं, लेखिका निरोत्तमा उच्च शिक्षा में शिक्षार्थी की इस मनोप्रवृत्ति से अत्यधिक चिंतित हैं। उत्तराधुनिक विद्यार्थी मेहनत नहीं करना चाहता। कॉलेज में शिक्षक विषय संबंधी नोट्स देते हैं जिन्हें रट-कर परीक्षा उतीर्ण कर लेते हैं। इसी प्रवृत्ति को उजागर करते हुए श्रेष्ठ व जगप्रसिद्ध निरोत्तमा शर्मा अपने लेख में कुछ इस प्रकार से लिखती हैं- "आधुनिक छात्र वर्ग शिक्षा का उद्देश्य परीक्षा उतीर्ण करना मात्र है ज्ञानोपलब्धि नहीं।"[5]

छात्रों के साथ मित्रवत व्यवहार न होने के कारण भी विद्यार्थी वर्ग शिक्षा से विमुख होते जा रहे हैं। डॉ. एम.एस. सचदेवा के अनुसार "सोलह वर्ष का होने पर उसके साथ मित्र जैसा व्यवहार करें। यह छात्रों के हित में होगा।"[6]

वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में विद्यार्थी का लक्ष्य केवल नौकरी प्राप्त करना रह गया है। रूसों ने भी शैक्षणिक प्रक्रिया में बालक को केन्द्रीय, मुख्य एवं सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है। विद्यार्थी के अनुरूप शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। शिक्षा अपने उद्देश्य, अपनी प्रक्रिया एवं अपने अर्थ सम्पूर्ण रूप से बालक के जीवन एवं अनुभव में ढूंढती है।

वर्तमान युग में विद्यार्थियों में संघर्षशीलता का अभाव है। यह मनोवृति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। उनमें संघर्ष न करने की प्रवृत्ति इतनी घर कर जाती है कि उन्हें जीवनपर्यन्त, इसके दुष्परिणामों को भुगतना पड़ता है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री लता पांडे के अनुसार "शिक्षक का बच्चे से प्यार, उसके प्रति विश्वास तथा उससे आत्मीय व्यवहार ही बच्चे में पढ़ने का कौशल सही ढंग से विकसित कर सकता है।"[7]

शिक्षा को अधूरा छोड़ देना:

भारत अभी भी निर्धनता के शाप से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया है। भारतीय जनसंख्या का एक बहुत बड़ा वर्ग अभी भी गरीबी रेखा से नीचे रहने को विवश है। दिनभर के अथक परिश्रम के बावजूद उन्हें इतना पारिश्रमिक नहीं मिलता, जिससे वे शिक्षा का उचित खर्च वहन कर सके, दो जून की रोटी मिल जाए वही काफी है। इसी अभावग्रस्तता के चलते शिक्षा बीच में ही छूट जाती है।

आज केवल बच्चों के ही लाइफस्टाइल में बदलाव नहीं आया है बल्कि माता-पिता भी बदल गए हैं। उनके पास अब बच्चों के लिए ज्यादा समय नहीं है क्योंकि माँ को अपनी किटीपार्टी भी अटैंड करनी है, घंटों अपनी सहेलियों से फोन पर बतियाना है, शॉपिंग के लिए भी समय निकालना होता है। भागदौड़ के दौर में माता-पिता के पास समय नहीं बचता । जब बच्चा कोई सवाल अपने माता-पिता से पूछता है तो उसको टाल दिया जाता है और बच्चे का मन पढ़ाई से हट जाता है जिसका परिणाम होता है कक्षा को अधूरा छोड़ देना या पढ़ाई से विमुखता।

वे विद्यार्थी जो महाविद्यालयों के बाद अतिरिक्त समय कार्य करके अपनी पढ़ाई का खर्च स्वयं वहन करते हैं या बहुत से निर्धन परिवारों के बच्चे औपचारिक शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयों/महाविद्यालयों में प्रवेश तो ले लेते हैं, परन्तु इस प्रकार की शिक्षा निरन्तर जारी रखने के लिए धन नहीं जुटा पाते तथा इसे बीच में ही छोड़ देते हैं। परिणामस्वरूप अपव्यय तथा अवरोध होता है। अवरोध इस प्रकार का भी होता है कि पर्याप्त सुविधाओं के न होने के कारण बच्चा/विद्यार्थी बार-बार एक कक्षा में अनुतीर्ण होता रहता है।

कुसंगति में पड़ना:

स्कूली शिक्षा से निकलकर जब विद्यार्थी महाविद्यालय/कॉलेज में प्रवेश पाता है तो वह कई प्रतिबंधों से मुक्त हो जाता है। स्कूलों जैसी रोक-टोक, शिक्षक का हस्तक्षेप या अन्य प्रकार की गतिविधियों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। इस कारण वह कुछ स्वच्छन्द प्रवृत्ति का सा हो जाता है, जिससे वह दृष्प्रवतियों की ओर अग्रसर हो जाता है। इसी विषय वस्तु को केन्द्रित करते हुए लेखक नरेश कुमार कहते हैं- "महाविद्यालयों में प्रवेश पाते ही विद्यार्थी स्वच्छन्द वातावरण का अनुभव करने लगता है।"[8]

[5] प्राइमरी शिक्षक, अक्तूबर, 2003, नीरोत्त्मा शर्मा, पृ. 51

[6] उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, डॉ. एम.एस. सचदेवा, पृ. 185

[7] प्राथमिक शिक्षक, अक्तूबर, 2008, लता पांडे, पृ. 42

[8] प्राइमरी शिक्षक, अक्तूबर, 2003, नरेश कुमार, पृ. 48

www.ignited.in

महाविद्यालयों में भिन्न-भिन्न संगठनों की घुमक्कड़ प्रवृत्ति अर्थात् आवारा प्रवृत्ति उसे अपनी ओर आकर्षित करती है। वह समूह के अन्य लड़कों से मिलकर वह दुष्प्रवृत्तियों में सम्मिलित हो जाता है। धूम्रपान, मदिरापान, विभिन्न प्रकार के नशे, फिजूल खर्ची उसके शौक बन जाते हैं। यह दुष्प्रवृत्तियों विद्यार्थी को शारीरिक व मानसिक रूप से हानि पहुंचाती हैं। इन दुष्प्रवृत्तियों से ग्रस्त विद्यार्थी का चारित्रिक एवं नैतिक पतन प्रारम्भ हो जाता है। उत्तर आधुनिक युग में मनुष्य दोहरे चरित्र को जी रहा है।

आधुनिक युग की भागदौड़ में मनुष्य अपने नैतिक चरित्र के विषय में सोचने का भी समय नहीं होता। इस अंधी दौड़ में वह भले-बुरे का ख्याल नहीं रख पाता है। अतः यह अनेक विसंगतियो से ग्रस्त हो जाता है। स्वास्थ्य की कमी, धन की कमी, जागरूकता की कमी के कारण ही विसंगतियां फैलती जा रही हैं। हमें समाज को इसके प्रति सचेत करना ही होगा।

प्रेम-प्रसंग में पड़ना:

मनुष्य की उत्पति के समय से ही वेदों, पुराणों, उपनिषदों, सूक्तों, आदि में मनुष्य जीवन के लिए नैतिक मूल्यों का प्रावधान है अर्थात् इन ग्रंथों में मनुष्य को जीवन भोगने के लिए मूल्यपरक शिक्षा दी गई है। पौराणिक ग्रंथ रामायण, महाभारत, भागवद्गीता, हितोपदेश, पंचतंत्र आदि मनुष्य के चरित्र के लिए अनुकरणीय ग्रंथ हैं। तुलसी का 'रामचरित' मनुष्य नैतिक मूल्यों का संवाद ही ग्रंथ है। उदीयमान लेखक डॉ. एम.एस. सचदेवा मनुष्य का संबंध नैतिकता से जोड़ते हुए कहते हैं- "नैतिकता से अलंकृति शिक्षा को भारतीय संस्कृति से जोड़ने के लिए शिक्षा आयोग ने शिक्षार्थियों में सामाजिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों के पोषण पर बहुत बल दिया है।"[9]

भारत में आदिकाल से ही नैतिक शिक्षा विराजमान रही है। भारत में धार्मिक व नैतिक शिक्षा ने सदा ही एक महत्वपूर्ण स्थान पाया है।सुप्रसिद्ध लेखक प्रमोद कुमार दुबे अपने एक लेख में व्यक्ति के सद्गुणों, नैतिक मूल्यों व आध्यात्मिक गुणों के बारे में लिखते हुए कहते हैं- "समाज व देश के हर व्यक्ति व वर्ग यह उम्मीद लगाता है कि उनके बच्चों के भीतर सद्गुणों, नैतिक मूल्यों तथा अध्यात्म गुणों का विकास हो और इन गुणों को वे अगली पीढ़ी को विरास्त में दें।"[10]

महाविद्यालयों का उन्मुक्त स्वच्छन्द वातावरण युवा वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करता है। छात्र और छात्राओं की सम्मिलित कक्षाएं अजनबी सहपाठियों से घुलना-मिलना, बातचीत करने से एक-दूसरे के प्रति आकर्षण का भाव होने से वे प्रेमपाश में बंध जाते हैं। प्रेम प्रसंग में पड़े युवक-युवतियाँ अपने लक्ष्यों से भटक जाते हैं जिससे नैतिक पतन के साथ-साथ उनका जीवन भी अंधकारमय हो जाता है।

चाटुकारिता की प्रवृत्ति:

शिक्षार्थी का नैतिक और आध्यात्मिक विकास शिक्षा का दूसरा उद्देश्य होना चाहिए। इसलिए विद्यार्थी को नैतिकता की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए। शिक्षा के द्वारा एक व्यक्ति को जीवन के सौन्दर्य की प्रशंसा की भावना विकसित करने योग्य बनाना चाहिए। यह गुण तभी आ सकते हैं जब विद्यार्थी नैतिक और आध्यात्मिक रूप से जागरूक हों और यह केवल नैतिक शिक्षा से ही संभव है।

लेकिन यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि आधुनिक विद्यार्थी नैतिकता से कोसों दूर होता जा रहा है। वह केवल परिणाम का आकांक्षी है। उच्च परिणामों की लालसा में वह बहुत से अनुचित मार्गों पर बढ़ सकता है और पतनोन्मुख हो जाता है। उच्चाकाक्षाओं में अच्छे अंक लेने के लिए विद्यार्थी परिश्रम करने की बजाय अपने अध्यापकगणों की चाटूकारिता अर्थात् चापलूसी करते हैं। अनैतिक कार्य करने से भी परहेज नहीं करते। इन्हीं कारणों के चलते घूस जैसी प्रवृत्तियाँ शिक्षा में प्रवेश कर गई। शिक्षा एक व्यवसाय बनकर रह गया। जिन छात्रों के अभिभावकों की आय कम है। उनके लिए शिक्षा ग्रहण कर पाना दुसाध्य हो गया है शिक्षा का व्यवसायीकरण होता जा रहा है अनेक बढ़ते निजी शिक्षण संस्थान चिंता का विषय बनते जा रहे हैं।

रैगिंग की समस्या:

बच्चे की पहली गुरु उसकी माँ होती है और उसका दूसरा गुरु शिक्षक होता है जो उसे विसंगतियों से बाहर निकालकर श्रेष्ठ मार्ग की ओर उन्मुख करता है। हिन्दी साहित्य के शिरोमणि कवि अज्ञेय जी इसी संदर्भ में कहते हैं- "भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है, इसमें गुरु को परमात्मा का दर्जा प्राप्त था।"[11]

गुरु के घर में रह कर सभी समुदायों के बच्चे आपस में प्रेमभाव से शिक्षा ग्रहण करते थे। उनमें तनिक भी भेदभाव नहीं होता था। शिक्षा के क्षेत्र में मैकॉले की शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने से शिक्षा के क्षेत्र में अनगिनत बुराईयां उत्पन्न हो

[9] उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, डॉ. एम.एस. सचदेवा, पृ. 229
[10] भारतीय आधुनिक शिक्षा, अक्तूबर, 2008, प्रमोद कुमार दुबे, पृ. 40
[11] भारतीय आधुनिक शिक्षा, शिक्षा-सांस्कृति संदर्भ (अज्ञेय),पृ. 52

गई हैं, जिनमें से रैगिंग की समस्या हमारे सामने है। इस समस्या में वरिष्ठ छात्र अपने कनिष्ठ छात्रों का मानसिक, शारीरिक, नैतिक, हर स्तर पर शोषण करते हैं। वरिष्ठ छात्र नए छात्रों का परिचय प्राप्त करने के नाम पर प्रताड़ित करते हैं। रैगिंग के कारण छात्रों ने आत्महत्याएं भी की हैं। हजारों छात्र रैगिंग के भूत से डर कर शिक्षा अधूरी छोड़ देते हैं। सरकार, शिक्षण संस्थानों व अध्यापकों को इसके खिलाफ कठोर नियमों को लागु करना होगा।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. डॉ. आत्माराम इक्कीसवीं सदी में शिक्षा अखिल भारती, 3014 चर्खेवालान, दिल्ली-110006

2. गोपाल कृष्ण अग्रवाल मानव समाज, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3. गोपाल कृष्ण अग्रवाल सामाजिक विघटन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972

4. जी.आर. मदान , समाज शास्त्र के सिद्धान्त, सरस्वती सदन, 7 यू.ए. नगर, दिल्ली-1969

5. डॉ. डी.एल. शर्मा शिक्षा तथा भारतीय समाज सूर्य पब्लिकेशन बध्व आर लाल बुक डिपो सप्तम संशोधित संस्करण-2007 (निकट गवर्नमेण्ट कॉलेज), मेरठ-250001

Corresponding Author

Sunita Devi*

Lecturer of Hindi, G. S. S. S. Gudha, Mohindergarh

sunitabrp1982@gmail.com